शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

अद्वैतवेदान्त एवं सांख्यदर्शन में सृष्टि-प्रक्रिया

भोला नाथ (शोधार्थी)
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

आस्तिक दर्शनों में अद्वैतवेदान्त तथा सांख्यदर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन दोनों दर्शनों की सृष्टि-प्रक्रिया अत्यधिक वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित होने से विद्वानों में अत्यधिक समादृत हुई है। किन्तु दोनों दर्शनों में सृष्टि-प्रक्रिया के सिद्धान्त का विश्लेषण करने पर अनेक मतभेद दिखाई देते हैं। अतः दोनों दर्शनों की सृष्टि-प्रक्रिया के सिद्धान्त के तुलनात्मक अध्ययन से इनके गुण और दोषों का पता लगाया जा सकता है। इससे पता चल सकेगा कि एक सत्य को अनेक लोग कितने प्रकार से कह सकते हैं। सत्य तो सबके लिए समान होता है। फिर वह सत्य व्यक्ति सापेक्ष कैसे हो जाता है। सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धान्त की खोज की दिशा में आधुनिक वैज्ञानिकों की रुचि को देखते हुए यह एक चिन्तन का विषय हो सकता है।

प्रस्तावना

अद्वैतवेदान्त और सांख्यदर्शन आस्तिक परम्परा के दो महत्त्वपूर्ण दर्शन हैं। इन दोनों दर्शनों में प्राप्त सृष्टि-प्रक्रिया अत्यधिक सुसङ्गत एवं वैज्ञानिक है। कपिल मुनि (७०० ई.पू.) को सांख्यदर्शन का आदि प्रवर्तक माना जाता है। कपिल मुनि के द्वारा लिखित सांख्यसूत्र पर आधारित ईश्वरकृष्ण द्वारा रचित सांख्यकारिका सांख्यदर्शन का अद्यावधि उपलब्ध प्रामाणिक ग्रन्थ है। जिस पर गौड़पाद ने अपना भाष्य लिखा है। दूसरी ओर अद्वैतवेदान्त की परम्परा उपनिषद् काल से मानी जाती है। प्रस्थानत्रयी वेदान्त दर्शन के तीन प्रमुख ग्रन्थ हैं। प्रस्थानत्रयी के अंतर्गत प्राप्त उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता पर विद्वत्पूर्ण भाष्य लिखकर आचार्य शंकर ने अद्वैतवेदान्त को प्रतिपादित किया। सदानन्द योगीन्द्र द्वारा रचित वेदान्तसार अद्वैत परम्परा का प्रकरण ग्रन्थ है।

अद्वैतवेदान्त के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में केवल ब्रह्मतत्त्व विद्यमान था। वह ब्रह्मतत्त्व स्वरूपतः शुद्धचेतन, सत्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप और ज्ञानस्वरूप है। उसी से सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है। वह ब्रह्म प्रारम्भ में अकेला था। उसने अनेक प्रजाओं की इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊँ,'तदैक्षत बहुस्याँ प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत'।1 सांख्यदर्शन के मत में सृष्टि के प्रारम्भ में दो तत्त्व थे। एक शुद्ध चेतन पुरुष और दूसरी शुद्ध जड़ तत्त्व प्रकृति। इसी कारण सांख्य को द्वैतवादी दर्शन माना जाता है।

आदितत्त्व का स्वरूप

अद्वैतवेदान्त शुद्ध चेतन ब्रह्म को सृष्टि का प्रथम तत्त्व मानता है। सृष्टि के प्रारम्भ में एक मात्र ब्रह्म अकेले ही वर्तमान था। दूसरा कोई तत्त्व नहीं था। उपनिषद् में उसके स्वरूप का कथन सत्य, ज्ञान और आनन्द रूप में किया गया है। नासदीय सूक्त में कहा

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

गया है कि उस समय न असत् था न ही सत् ही था अर्थात् समस्त नाम और रूप से रहित था। किन्तु उसका अभाव भी नहीं था। पुरुष की जिस प्रकार सुषुप्तावस्था में प्रपञ्चशून्य स्वानुभूति होती है। ब्रह्म भी उसी प्रकार की सुषुप्तावस्था में विद्यमान था,'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्। किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्'॥2 इस प्रकार अद्वैतवेदान्त समस्त उपाधियों से शून्य एक चेतन तत्त्व को सृष्टि का प्रारम्भिक तत्त्व मानता है। इस प्रकार के सर्वव्यापक तत्त्व का वर्णन करना उपनिषद् का प्रमुख विषय है।

सांख्यदर्शन में प्रकृति और पुरुष को सृष्टि का प्रारम्भिक तत्त्व माना गया है। जिसमें पुरुष को चेतन स्वरूप ज्ञ रूप तथा प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न माना गया है। सांख्य मूल प्रकृति को एक मानता है तो पुरुष व्यक्तिगत भेद से अनन्त है। अद्वैतवेदान्त दर्शन में चेतन ब्रह्म एक है। किन्तु पुरुष भेद से माया अनेक है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का अज्ञान भिन्न-भिन्न है। सांख्य की प्रकृति चेतन तत्त्व से पृथक् है उसका भी अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व है और जड़ रूप है। यह प्रकृति प्रसवधर्मी, त्रिविध गुणों की साम्यावस्था रूप तथा चेतन पुरुष की तरह नित्या है। अद्वैतवेदान्त में माया को त्रिगुणात्मक कहा गया है। किन्तु उसकी साम्यावस्था का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। वह माया तात्विक रूप से असत् है। किन्तु व्यावहारिक रूप से सत् है। इस प्रकार सत् और असत् की दृष्टि से माया को अनिर्वचनीय कहा गया है, 'सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो, भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो। साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो, महाद्भुतानिर्वचनीयारूपा'॥3 अद्वैतमत में माया ब्रह्म की शक्ति है। जैसे शक्ति और शक्तिमान में भेद नहीं होता उसी प्रकार माया और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है।

अज्ञान की अनिर्वचनीयता : अद्वैतवेदान्त में सृष्टि की उत्पत्ति में मूल कारण अज्ञान को माना गया है। इसी अज्ञान के बल पर सम्पूर्ण अद्वैतवाद स्थित है। आचार्य शंकर जगत् को मिथ्या कहते है तो इसी अज्ञान के बल पर। वेदान्तसार में अज्ञान को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि यह अज्ञान सत् और असत् से भिन्न अनिर्वचनीय रूप है। सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों से युक्त होने से त्रिगुणात्मक है,'अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चिदिति वदन्त्यहमज्ञ इत्याद्यनुभवात्'।4 यह अज्ञान ब्रह्म की शक्ति है। ब्रह्म अपनी ही शक्ति से आवृत होकर जगत् की सृष्टि करता है। जैसा कि श्वेताश्वतर में कहा गया है कि वह देवात्म शक्ति अपने ही गुणों से आवृत्त है,'देवात्म शक्तिं स्वगुणैः निगूढ़ाम्'।5 इस अज्ञान को समष्टि और व्यष्टि के भेद से दो रूपों में देखा जा सकता है। समष्टि अज्ञान वह है जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक साथ आवृत्त है। इसीलिये जगत् का स्वरूप सबके लिये एक जैसा है। इस समष्टिभूत अज्ञान से आवृत्त चैतन्य को ईश्वर कहा जाता है। व्यष्टि अज्ञान से उपहित चैतन्य को जीव कहा जाता है। व्यष्टि अज्ञान व्यक्तिगत भेद से भिन्न-भिन्न होता है। इस अज्ञान की आवरण और विक्षेप नामक शक्तियों का उल्लेख करते हुए सदानन्द योगीन्द्र ने लिखा है कि आवरण शक्ति ब्रह्म के स्वरूप को

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

आवृत्त करने वाली होती है, जबकि अज्ञान की विक्षेप नामक शक्ति से भेद की उत्पत्ति होती है।

अज्ञान की आवरण शक्ति

'आवरणशक्तिस्तावदल्पोऽपि मेघोऽनेकयोजनायतम् आदित्यमण्डलम् अवलोकयितृ नयनपथपिधायकतया यथाच्छादयतीव, तथाज्ञानं परिच्छिन्नमप्यात्मानम् अपरिच्छिन्नमसंसारिणमवलोकयितृबुद्धिपिधायकत याच्छादयतीव'। अर्थात् आवरण शक्ति मेघ के समान है। जैसे मेघ छोटा होने पर भी सहस्र योजन क्षेत्र को प्रकाशित करने वाले सूर्य को ढक लेता है। उसी प्रकार यह आवरण शक्ति भी पुरुष की बुद्धि को आवृत्त कर लेती है। जिससे सर्वव्यापक ब्रह्म भी परिच्छिन्न सा हो जाता है।

अज्ञान की विक्षेपशक्ति

'विक्षेपशक्तिस्तु यथा रज्ज्वज्ञानं स्वावृत्तरज्जौ स्वशक्त्या सर्पादिकमुद्भावयति एवमज्ञानमपि स्वावृत्तात्मनि विक्षेपशक्त्याकाशादिप्रपञ्चमुद्भावयति'।6 अर्थात् जिस प्रकार अज्ञान से आवृत्त रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है। उसी प्रकार समष्टि अज्ञान से उपहित चैतन्य में जगत् प्रपञ्च की प्रतीति होती है।

ईश्वर तत्त्व

अद्वैतवेदान्त में समष्टि अज्ञान से उपहित चैतन्य को ईश्वर कहा गया है। यह ईश्वर ही जगत् की उत्पत्ति के प्रति वास्तविक कारण है। अब सवाल यह है कि ईश्वर जगत् की उत्पत्ति के प्रति किस प्रकार का कारण है ? उपादान कारण है या निमित्त कारण है। इसके उत्तर के रूप में मुण्डकोपनिषद्(१.१.७) का उदाहरण दिया जाता है। जिस प्रकार जाले के प्रति मकड़ी अपने चैतन्य की दृष्टि से निमित्त कारण होती है और अपने शरीर की दृष्टि से उपादान कारण होती है। उसी प्रकार ईश्वर भी इस जगत् का उपादान और निमित्त दोनों प्रकार का कारण है। अपने चैतन्य की प्रधानता से निमित्त और माया की दृष्टि से उपादान कारण है।

सृष्टि प्रक्रिया का कारण

सवाल यह है कि सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्म तत्त्व था यह ठीक है। किन्तु सृष्टि का प्रारम्भ क्यों हुआ और कैसे हुआ। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है कि ब्रह्म को अकेले अच्छा नहीं लगा। इसलिए उसने अनेक होने की इच्छा प्रकट की, कि मैं अकेला हूँ बहुत हो जाऊँ इसलिए उसने अनेक प्रजाओं की सृष्टि की। इस प्रकार अद्वैतवेदान्त के मत में अनेक प्रजाओं की चाह सृष्टि का प्रथम प्रयोजन था। उसके लिये ईक्षण शक्ति का प्रयोग करना सृष्टि का प्रथम कारण था। सांख्यदर्शन में पुरुष और प्रकृति के संयोग को पङ्गु-अन्धवत् बताया गया है। यहाँ पर पुरुष और प्रकृति के संयुक्त होने का दो प्रयोजन था। प्रथम पुरुष के लिये दूसरा प्रकृति के लिये । पुरुष प्रकृति के बिना चल नहीं सकता और प्रकृति पुरुष के विना स्वत: देख नहीं सकती। पुरुष का कैवल्य तभी होगा जब वह चलेगा। इसलिए प्रकृति पुरुष के कैवल्य के लिए तथा पुरुष प्रकृति के दर्शन के लिए पङ्गु-अन्धवत दोनों का संयोग होता है।7 इससे ज्ञात होता है कि पुरुष अनन्त काल से बन्धन में था। इसलिए उसके कैवल्य की आवश्यकता हुई।

महत् तत्त्व

महत् शब्द सांख्यदर्शन से सम्बन्ध रखता है। जिसका प्रयोग बुद्धि के लिये हुआ है।8 कठोपनिषद् में भी महत् शब्द आया है जहाँ पर कहा गया है कि अव्यक्त महत् से श्रेष्ठ है और पुरुष अव्यक्त से श्रेष्ठ है। किन्तु पुरुष से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। वही

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

श्रेष्ठता की पराकाष्ठा है। सांख्यदर्शन में महत् को अव्यक्त प्रकृति का कार्य कहा गया है। इस प्रकार महत् तत्त्व सांख्यदर्शन की सृष्टि-प्रक्रिया में प्रथम तत्त्व है। अध्यवसाय बुद्धि की वृत्ति है। अध्यवसाय निश्चयात्मिका वृत्ति को कहते हैं।9 सांख्यदर्शन में बुद्धि त्रिविध अन्त:करण में से एक है। इसके विपरीत अद्वैतवेदान्त में बुद्धि अन्त:करण का ही एक नाम है। अन्त:करण की निश्चयात्मिका वृत्ति को बुद्धि कहा जाता है। जिसकी उत्पत्ति सूक्ष्म महाभूतों के सात्विक अंश से होती है।

अहंकार

अद्वैतवेदान्त में अहंकार अन्त:करण का एक व्यापार विशेष है। जिसमें मैं की भावना होती है अर्थात् अन्त:करण ही मैं की भावना से युक्त होने पर अहंकार कहलाता है। अद्वैतवेदान्त में सूक्ष्म महाभूतो के सम्मिलित सात्विक अंश से अहंकार की उत्पत्ति बतायी गई है। सांख्यदर्शन में अहंकार महत् का कार्य है। अभिमान करना अहंकार की वृत्ति है,'अभिमानोऽहंकार:'।10 इस अहंकार के सत्त्व, रजस् और तमस् अंश से भिन्न-भिन्न तत्त्वों की सृष्टि होती है। अहंकार के सात्विक अंश से एकादश इन्द्रियों तथा तमस् अंश से तन्मात्रा की उत्पत्ति होती है।

मनस्

अद्वैतवेदान्त में पञ्चतन्मात्राओं के सात्विक अंश से निर्मित अन्त:करण की संकल्प-विकल्पात्मक वृत्ति का नाम मन है।11 सांख्यदर्शन में दश इन्द्रियों के साथ मन को भी अहंकार के सात्विक अंश से उत्पन्न हुआ बताया गया है। संकल्प को मन की वृत्ति कहा गया है।12 ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों दोनों प्रकार के लक्षणों से युक्त होने के कारण इसे उभयात्मक इन्द्रिय कहा जाता है,'उभयात्मकमत्र मन: संकल्पकमिन्द्रियञ्च'।13 अद्वैतवेदान्त में मोक्ष प्राप्त करने की दृष्टि से मन का अत्यधिक महत्त्व है। कठोपनिषद् कहती है कि आत्मतत्त्व मन से ही जाना जा सकता है। उसे जानने के लिये अन्य कोई भी उपाय नहीं है,'मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंञ्चन'।14

चित्त

अद्वैतवेदान्त में अन्त:करण के चिन्तन नामक व्यापार को चित्त कहा गया है। चित्त और चित् दो शब्द है। चित् शब्द का प्रयोग चेतन तत्त्व के लिये होता है। चित्त शब्द का अर्थ अन्त:करण है। यह चित्त शब्द अन्त:करण में प्रतिबिम्बित चैतन्य के लिये प्रयोग होता है,'स्वार्थानुसन्धान गुणेन चित्तम्'।15

अन्त:करण की सृष्टि

करण दो प्रकार का होता है। प्रथम अन्त:करण द्वितीय बाह्यकरण। बाह्य करण दश इन्द्रियों को कहते हैं क्योंकि इनसे बाह्य विषयों का ज्ञान होता है। सुख दु:ख आदि अन्तस्थ धर्मों का ज्ञान कराने के लिए मन बुद्धि इत्यादि को अन्त:करण कहते हैं। अद्वैतवेदान्त में चार अन्त:करण बताया गया है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। ये चार प्रकार सिर्फ व्यापार पर आधारित हैं। वस्तुत: यह अन्त:करण एक ही है। आचार्य शंकर ने विवेक चूड़ामणि में लिखा है कि एक ही अन्त:करण जब संकल्प-विकल्प करता है तब उसे मन कहते हैं। पदार्थ का जब निश्चय करता है तब उसे बुद्धि कहते हैं। मैं के साथ जब उसमें अभिमान आ जाता है तब उसे अहंकार शब्द से बोधित करते हैं। अपना इष्ट चिन्तन करने के कारण

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

इसे चित्त कहते हैं।16 आचार्य शंकर कहते हैं कि कर्ता, भोक्ता और मैं की पुरुष में जो भावना होती है। वह अहंकार के कारण ही होती है। सत्त्व गुण के कारण कर्तापन की भावना आती है, रजस् गुण से भोक्ता तथा तमोगुण से मैं की भावना बनती है।17 सुख और दु:ख इसी अहंकार के धर्म कहे गये हैं आत्मा के नहीं।

सांख्यदर्शन में अन्त:करण को त्रिविध कहा गया है - बुद्धि, अहंकार और मन।18 अध्यवसाय को बुद्धि का धर्म बताया गया है। कर्तव्य का निश्चय ही अध्यवसाय है।19 सात्विक और तामस् के भेद से बुद्धि के आठ भेद हैं, धर्म, ज्ञान, वैराग और ऐश्वर्य ये बुद्धि के सात्विक अंश हैं। इसके विपरीत अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य बुद्धि के तमस् धर्म बताये गये हैं।

अद्वैतवेदान्त में पञ्चतन्मात्राओं के सम्मिलित सात्विक अंश से अन्त:करण की सृष्टि होती है। जबकि सांख्यदर्शन में अव्यक्त प्रकृति से महत्। महत् से अहंकार तथा अहंकार से पञ्चतन्मात्राओं की उत्पत्ति बताई गयी है। पुन: इन पञ्चतन्मात्राओं के सात्विक अंश से केवल मनस् अन्त:करण बनता है। इसीलिए मनस् कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों के अन्तर्गत परिगणित होता है। अद्वैत मत में पञ्चतन्मात्रा के सात्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय और रजस् अंश से कर्मेन्द्रिय तथा तमस् अंश से पञ्चमहाभूत की उत्पत्ति बतायी गयी है। सांख्यदर्शन में ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति अहंकार के सात्विक अंश से मानी गयी है।

दशेन्द्रिय

इन्द्रियों की संख्या सभी दर्शनों में एक मत से दश स्वीकार की गयी है।20 मन को कहीं-कहीं छठी ज्ञानेंन्द्रिय भी माना गया है। अद्वैत और सांख्यदर्शन में ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों का सहयोगी होने से इसे उभेन्द्रिय कहा गया है। इन ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति के विषय में सांख्यदर्शन और अद्वैतवेदान्त मत में भेद है। अद्वैतवेदान्त पञ्चतन्मात्रा के सात्विक अंश से ज्ञानेद्रिय की उत्पत्ति मानते हैं। रजस् अंश से कर्मेन्द्रिय की। इसके विपरीत सांख्यदर्शन में ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय को अहंकार के सात्विक अंश से उत्पन्न बताया गया है। अद्वैतवेदान्त के मत में आकाश(शब्द) के सात्विक अंश से श्रोत्र तथा रजस् अंश से वाक् कर्मेन्द्रिय बनती है। वायु(स्पर्श) के सात्विक अंश से त्वक् ज्ञानेन्द्रिय तथा रजस् अंश से पाणि कर्मेन्द्रिय बनती है। अग्नि(रूप) के सात्विक अंश से चक्षु नामक ज्ञानेद्रिय तथा पाद नामक कर्मेन्द्रिय बनती है। जल (रस) के सात्विक अंश से रसना नामक ज्ञानेन्द्रिय तथा पायु कर्मेन्द्रिय बनती है। इसी प्रकार पृथ्वी (गन्ध) के सात्विक अंश से घ्राण ज्ञानेन्द्रिय तथा उपस्थ नामक कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति होती है।21

पञ्चप्राण

वेदान्तसार में प्राण की संख्या पाँच बतायी गयी है - प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान।22 यह प्राण एक ही है किन्तु वृत्ति भेद से पाँच प्रकार का होता है। प्राण के धर्मों का उल्लेख करते हुए वेदान्त चूड़ामणि में कहा गया है कि श्वास-प्रश्वास, छींकना, काँपना, उछलना, क्षुधा और पिपासा आदि प्राण के धर्म हैं।

प्राण : 'प्राणो नाम प्राग्गमनवान्नासाग्रस्थानवर्त' अर्थात् ऊर्ध्व गमन करने के कारण नासाग्रवर्ती वायु

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

को प्राण कहते हैं। प्राणन् (श्वसन्) करने से प्राण कहा जाता है।

अपान: 'अपानो नामावाग्गमनवान् पाय्वादिस्थानवर्ती' नीचे की ओर गमन करने वाले और पायु आदि स्थानों में रहने वाले वायु का नाम अपान है। अपनयन(हटाने) से इसे अपान कहा जाता है।

व्यान: 'व्यानो नाम विश्वग्गमनवानखिलशरीरवर्ती' चारों ओर गमन करने वाले तथा सारे शरीर में रहने वाले वायु का नाम व्यान है।

उदान: 'उदानो नाम कण्ठस्थानीय ऊर्ध्वगमनवानुत्क्रमण वायु:' कण्ठ में रहने वाले तथा ऊर्ध्व गमन करने वाले वायु का नाम उदान है।

समान: 'समानो नाम शरीरमध्यगताशितपीतान्नादिसमीकरणकर:' खाये पिये अन्न-जल आदि का समीकरण करने वाली वायु का नाम समान है।23

इस वायु के व्यापार के कारण ही सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ होती हैं। प्रत्येक इन्द्रिय का अपने विषयों को ग्रहण करने में अलग-अलग जो व्यापार देखा जाता है। वह उन इन्द्रियों का असाधारण या असामान्य व्यापार कहा जाता है। इसी प्रकार प्राण, अपान आदि पाँच वायुओं का भी अपना अलग-अलग व्यापार देखा जाता है। किन्तु इन्द्रियों के अपने विषय ग्रहण करने के समय प्राण का जो स्पन्दन नामक व्यापार होता है। उसे सभी इद्रियों का सामान्य व्यापार कहा जाता है।

पञ्चतन्मात्राओं से महाभूतों की उत्पत्ति: अद्वैतवेदान्त में जो सृष्टि-प्रक्रिया बतायी गयी है। सांख्यदर्शन की सृष्टि-प्रक्रिया उससे पूर्णत: भिन्न है। उपनिषद् में आत्मा से सर्वप्रथम आकाश की उत्पत्ति बतायी गयी है। आकाश से वायु , वायु से अग्नि, अग्नि से जल और पुन: जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, ऐसा माना गया है। ये आकाश आदि सूक्ष्म होने से सूक्ष्म महाभूत तथा सिर्फ अपने गुणों को लिए होते हैं। इसलिए तन्मात्रा भी कहे जाते हैं। सांख्यदर्शन में इन तन्मात्राओं की उत्पत्ति अहंकार के तमस् अंश से बताई गयी है।

वेदान्तसार के अनुसार तन्मात्राओं में पञ्चीकरण की प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया के बाद स्थूल महाभूत बनते हैं। जिसके कारण प्रत्येक स्थूल भूत में अन्य महाभूतों के गुण भी आ जाते हैं। सांख्य मत पञ्चीकरण की प्रक्रिया को स्वीकार नहीं करता है। सांख्यदर्शन के अनुसार शब्द तन्मात्रा से आकाश महाभूत की उत्पत्ति हुई, स्पर्श तन्मात्रा से वायु महाभूत, रूप तन्मात्रा से अग्नि महाभूत, रसतन्मात्रा से जल महाभूत तथा गन्ध तन्मात्रा से पृथ्वी महाभूत की उत्पत्ति हुई।

निष्कर्ष

अद्वैतवेदान्त तथा सांख्यदर्शन की सृष्टि-प्रक्रिया का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन करने के उपरान्त हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :

अद्वैतवेदान्त में सृष्टि का प्रयोजन अनेक प्रजाओं की सृष्टि करना है। जबकि सांख्यदर्शन के मत में पुरुष को कैवल्य प्रदान करना बताया गया है।

अद्वैतवेदान्त में ब्रह्म अपनी माया से स्वयमेव आवृत्त होकर आकाशादि प्रपञ्च की सृष्टि करता है। सांख्यदर्शन में सृष्टि का प्रारम्भ पुरुष प्रकृति के संयोग से होता है।

सांख्यदर्शन में पुरुष प्रकृति संयोग के उपरान्त महत्, अहंकार, एकादशेन्द्रियाँ, तन्मात्रा पुन: महाभूतों की उत्पत्ति बताई गयी है। अद्वैत मत में आत्मा से

सर्वप्रथम आकाश, आकाश से वायु की उत्पत्ति बताई गयी है।

अद्वैतवेदान्त में एकादशेन्द्रियों की उत्पत्ति सूक्ष्म भूतों के सात्विक और रजस् अंश से बताई गयी है। जबकि सांख्यदशन में एकादशेन्द्रियों की उत्पत्ति अहंकार के सात्विक अंश से बताई गयी है।

अद्वैतवेदान्त में पञ्चीकरण प्रक्रिया स्वीकृत है। सांख्यदर्शन में सभी स्थूल महाभूत अपने-अपने तन्मात्राओं से उत्पन्न हुए हैं।

अद्वैतवेदान्त में अन्तःकरण एक है। किन्तु वृत्ति भेद से वह चार हो जाता है। सांख्यदर्शन में मन, बुद्धि और अहंकार केवल तीन अन्तःकरण है।

इससे ज्ञात होता है कि सांख्यदर्शन तर्क की कसौटी पर व्यवस्थित किया गया एक सिद्धान्त मात्र है। इस दर्शन का प्रत्येक स्पष्टीकरण सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों के परस्पर भेद पर आधारित है। किसी तत्त्व की सृष्टि होने में त्रिविध गुणों की मात्रात्मक वैषम्य कारण होता है। किन्तु इस वैषम्य को उत्पन्न करने के प्रति प्रक्रिया और कारण का ज्ञान कराने में यह दर्शन असमर्थ दिखायी देता है। दूसरी ओर अद्वैतवेदान्त में भी जगत् प्रपञ्च की व्याख्या अज्ञान की आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियों के द्वारा की जाती है। इन दोनों शक्तियों को अनिर्वचनीय कहा गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 छा.उ.६.२.३
2 ना.सू.१०.१२९.१
3 वि.चू.१११
4 वे.सा.११
5 श्वे.उ.१.३
6 वे.सा.१७
7 सां.का.२१
8 गौ.भा.२२
9 सां.का.२३
10 सां.का.२४
11 वि.चू.९५
12 सां.का.२९
13 सां.का.२७
14 कठ.उ.२.१.११
15 वि.चू.९६
16 वि.चू.९५,९६
17 वि.चू.१०६
18 सां.का.३३
19 सां.का.२३
20 वि.चू.२४
21 वे.सा.२२
22 वे.सा.२२
23 सां.का.२९